समकालीन हिन्दी लेखिकाओं के उपन्यासों में चित्रित नारी का स्वरूप

डॉ. सीमा तिवारी
डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी, हिंदी विभाग
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय फ़ैजाबाद

हिन्दी में स्त्री लेखन की स्थिति पर कुछ आलोचक, लेखक असंतुष्ट हैं तो कुछ पुरी तरह असंतुष्ट न होकर इसके भविष्य, दिशा को लेकर आस्थावान हैं। बहुत से आलोचकों को तो स्त्रीलेखन' गुड्डों–गुड़ियों का खेल' ही प्रतीत होता है। पिछले चार–पॉच दषकों से स्त्री लेखन ने निश्चित रूप से कुछ ऐसे तीखे, ज्वलंत अन्तर्विरोधों, विरोधाभासों, प्रश्नों को सामने रखा है जिससे स्त्री लेखन की एक अलग पहचान बननी शुरू हुई हैं। कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, गगन गिल, मृदुला गर्ग, महाश्वेता देवी की रचनाओं में स्त्री लेखन की एक अलग पहचान सामने आयी है। यह बदलाव इसी दशक में सर्वाधिक आया है कयोंकि इनके लेखन में स्त्री के अधिकारों के प्रति सजगता, आक्रमकता, तीखापन तथा पितृक समाज की कड़ी आलोचना हुई हैं इस प्रकार के तेवर पिछले दशकों में स्त्री लेखन में कमजोर थे।

हमारे यहॉ दो तरह का स्त्री लेखन होता रहा है। पहली तरह के लेखन में स्त्री की परम्परागत छवि ही उभरी थी तथा उनके पास स्त्री होते हुए भी स्त्री दृष्टि का अभाव था। यथार्थ की पकड़ ढीली थी। वह यथार्थ की सतही तस्वीर ही बन पाती थी। उनके लेखन में मानवीय सम्बन्धों का निरूपण तो था लेकिन उनके पीछे जो राजनीतिक दृष्टि, विचारधारा, पितृसत्तात्मक नैतिक मूल्य काम करते हैं उन पर विचार नहीं होता था। हांलाकि स्त्रीत्ववादी लेखिकाओं का यह दृढ़ विश्वास एवं विचार रहा है कि कोई भी साहित्यिक कृति इन पितृसत्तात्मक नैतिकताओं, मूल्यों,धर्म, कानून, परिवार से मुक्त, निरपेक्ष, तटस्थ नहीं होती। उनमें निहित मानवीय सम्बन्धों में पितृसत्तात्मक सामाजिक मर्यादाएँ ही काम करती है। यहीं से स्त्री लेखन का प्रश्न नया 'ढॉचा' तैयार होता है। इसे तैयार करने में भी पितृसत्तात्मक नैतिकता का ही हाथ है जो कि पूर्णतया स्त्री विरोधी है।

महादेवी वर्मा जी ने चौथे दशक में 'श्रृंखला की कड़ियॉ' भारतीय नारी की समस्या का विवेचन करने वाली पुस्तक लिखकर सिद्ध किया कि वे नारी के संतप्त और अभिशप्त जीवन के प्रति कितनी चिन्तित, ईमानदार, प्रतिबद्ध थीं। लेकिन आज किसी लेखिका ने महादेवी के उस काम को आगे नहीं बढ़ाया। उन्हें रहस्यवादी कहकर उनके लेखन की इतिहास दृष्टि, सामाजिक चेतना की उपेक्षा ही की गई गगन गिल ने इस सच्चाई को सामने रखते हुए तर्क दिया है, कि ''आजादी से पहले और आज महिला–लेखन के तेवर में निश्चित ही बड़ा फर्क है। आजादी से पहले की शुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा हर सामाजिक रचानात्मक आन्दोलन में बराबरी के स्तर पर शामिल रहीं। अपने समय के सभी जोखिम उठाये अपने समकालीन रचनाकारों के प्रति उनका सौहार्द, जिसका विवरण हम उनके भावपूण्र संस्मरणों में पढ़ते

हैं, एक स्वस्थ परम्परा में ही संभव हो सका, जो दुर्भाग्य से आज नहीं है। आज हम दो मुँहें मानदण्डों वाले समाज में रहते है। चिड़ियों के साथ तो चिड़िया उड़ सकती है, लेकिन चिड़ीमारों के साथ?''

यह भी एक विचित्र विडम्बना है कि हमारे पितृक समाज के मानदण्ड दोहरे हैं। पितृक समाजों में स्त्री लेखन की अपनी चुनौतियॉ होती हैं। क्या कारण है कि स्त्रियॉ आत्मकथा, संस्मरण नहीं लिखती? क्या आज लेखिकाओं और पुरूष लेखकों के बीच वे सौहार्द पूर्ण, आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध हैं जो महादेवाी वर्मा जी की 'पथ के साथी' में मिलते हैं? जब तक ऐसे अंतर्विरोध, विरोधाभास नहीं मिटते तब तक लेखन में भी वह आत्मीयता, मानवीयता पैदा नही हो सकती। अधिकतर स्त्री लेखन में वह स्त्री दृष्टि ही नहीं है जो आज के समय की सबसे बड़ी जरूरत हैं। ''दुर्भाग्यपूर्ण यह भी है कि हमारे यहॉ महिला लेखकाओं ने स्वयं भी बड़े जोखिम नही उठाये, न बीहड़ यात्राएं की, न अनजाने अनुभवों के समक्ष प्रस्तुत हुई, न अपनी विशाल साहित्यिक संपदा का ही ठीक से अध्ययन किया। क्या कारण है कि आजादी के बाद हमारे यहॉ एक भी महिला या पुरूश महाश्वेता देवी जैसा नहीं हुआ जो आदिवासियों की कथा लिख सकें? इरावती कर्वे जैसी विदुषी नहीं हुई जो एक नया पौराणिक ऐतिहासिक चिन्तन दे सके? हमारी अधिकांष महिलाऍ 'काउच' लेखन करती रहीं।'' जब तक स्त्रियॉ लेखन की दुनिया के लिए जबर्दस्त बीहड़ यात्राऍ, संघश नहीं करती तब तक साहित्य में स्त्री चेतना का विकास सम्भव नहीं हैं यदि उनके लेखन में वह धार, तीखापन, चेतना, प्रतिरोध करने का वह साहस होगा तभी स्त्री समाज की सोई हुई चेतना जाग सकती है तथा पुरूश सावधान हो सकते हैं।

प्रायः यह कहा जाता है कि स्त्री लेखन में स्त्री पुरूष सम्बन्धों, परिवार के बिखराव की ही अभिव्यक्ति होती है, वह भी अत्यन्त सीमित और सतही रूप में ही। क्या वह सच नहीं है कि परिवार और स्त्री पुरूष सम्बन्ध भी हमारे जीवन का एक कटु यथार्थ है? प्रश्न यह नहीं है कि स्त्री लेखन घर, परिवार, बच्चे, स्त्री–पुरूष सम्बन्धों के सीमित दायरे में बॅटा हुआ है, बल्कि प्रश्न तो यह है कि घर, परिवार, बच्चे, स्त्री–पुरूष सम्बन्धों` का निरूपण वहॉ किस रूप में हो रहा है? उसके पीछे स्त्री दृष्टि क्या काम कर रही है? वह घर, परविार, स्त्री– पुरूष सम्बन्धों के पीछे सदियों से काम कर रहीं पितृक अनुशासिकी, तानाशाही, अनुशासन को किस प्रकार समझ, देख और दिखा रही हैं? परिवार का स्त्री के लिए एक अपना ही तानाशाही अनुशासन है, पितृक व्यवस्था है। नियम और कानून है जिसने स्त्रियों को बुरी तरह से जकड़ा हुआ है। यदि स्त्री लेखन में ऐसा संघर्श है तो वह इसकी ताकत है, सीमित दायरा नहीं। यही उसका अपना यथार्थ है जो किसी पुरूश, पितृक व्यवस्था का यथार्थ नहीं हो सकता। सही कहा है महादेवी वर्मा जी ने कि अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए अर्थात् यदि स्त्रियॉ अपने अधिकारों, स्वामित्व के अधिकारों भी होना चाहिए अर्थात् यदि स्त्रियॉ अपने अधिकारों, स्वामित्व के अधिकारों से वंचित हैं तो क्या उनमें अधिकारों के प्रति चेतना भी है कि वे अधिकार उन्हें कैसे मिलेंगे,

क्यों मिलेंगे और यदि मिलेंगे भी तो क्या भिक्षावृत्ति से।'' दुनिया के इतिहास में कहीं स्त्री के स्वामित्व के अधिकरों की बात उठी है तो वह एक प्रखर स्त्री चेतना द्वारा ही। उन स्त्रियों में अपने अधिकारों के प्रति जबर्दस्त चेतना थी। इसलिए उन्होंने उन तमाम बराबरी के अधिकार भिक्षावृत्ति से न पाकर, संघर्ष करके ही अर्जित किए। इसके लिए उन्हें बहुत बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ी। महादेवी वम्र जी ने इस सम्बन्ध में सही कहा है कि –'' हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किस पर प्रभुत्व चाहिए, न किसी पर प्रभुता। केवल अपना वह स्थान, वह स्वत्व चाहिए जिनका पुरूषों के निकट कोई उपयोग नहीं हैं, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी।''

जब तक स्त्री लेखन अन्याय, अत्याचारों के विरूद्ध नहीं लिखा जाता, उसका प्रतिरोध नहीं करता, स्त्री की सुरक्षा के लिए संघर्ष नहीं करता तब तक वह यथास्थितिवाद का ही पक्षधर रहेगा। आजादी के बाद जिस प्रकार का स्त्री लेखन सामने आया उससे स्त्री की परम्परित छवि ही सामने आयी। वह स्त्री–पुरूष के टूटते–बनते, बिगड़ते प्रेम सम्बन्धों, यौन सम्बन्धों तक ही सीमित रहा। मन्नू भण्डारी की कहानियों में मानवीय सम्बन्ध, प्रेम का स्वरूप, सम्बन्धों की जटिलताएँ, ऊषा प्रियंवदा की कहानियों में 'स्त्री–पात्र' आदि–इस तरह के स्त्री लेखन पर जो शोध कार्य हुआ भी वह अधिकतर लडकियों ने ही किया। विचित्र विरोधाभास तो यह है कि ऊषा प्रियंवदा की कहानियों में स्त्री यथाथ्र को स्वीकारने का साहस तक उन शोध छात्राओं में नहीं था।

इस प्राकर के स्त्री लेखन के सम्बन्ध में दूसरी जबर्दस्त दिक्कत यह है कि उसका अभिग्रहण करने वाली पाठकीय मानसिकता का प्रभाव ही रहा है। स्त्री पाठिकाएँ संस्कारवष परम्परित तरह की पितृक व्यवस्था में जीने मरने वाली है। इसलिए ऐसे परिवर्तनकामी, यथास्थितिवाद को तोड़ने वाले साहित्य और उनमें से उभरने वाले प्रश्नों से उन्हें भय भी लगता है और आश्चर्य भी। वहॉ पाठकीय ग्रहणशील मानसिकता नहीं के बराबर है। यह क्या विचित्र विरोधाभास नहीं हैं कि अपने स्वत्य से जुड़े हुए प्रश्नों से ही पाठिकाएँ खामोश, प्रतिक्रियाहीन हैं ? इस विरोधाभास का मुख्य कारण है स्त्री पाठिकाओं के परम्परागत संस्कार, जो उन्हें पितृसत्तात्मक समाज में विरासत में दिए हैं जिन्हें उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ आत्मसात् कर लिया है। स्त्री लेखन का सबसे अहम् दायित्व यह है कि स्त्री–पाठिकाओं को झकझोरना, उनके परम्परित जर्जरित संस्कारों को तोड़ना निजमें वे बुरी तरह से कैद है। इसके बिना स्त्री समाज की सोच नहीं बदल सकती।

''महिला लेखन से महिलाओं को पूर्णरू‍प से ' फ्रीडबैंक' मिलता है। नारी लेखनल नारी मन की ही अभिव्यक्ति हैं नारी में नारी की गूंगी पीड़ा को लिखा, उजागर किया, उसके मौन को शब्द दिए। पुरूष लेखक के लिए नारी रूमानीख्याल, यादों की मूरत थी, बेशक नारी लेखन ने पुरूष लेखकों के हाथ से उसकी सुन्दर बेजजान गुड़िया छीन ली है और रोती, चीखती, बिलखती, कलपती नारी को सामने ला

खड़ा किया है।'' मेहरून्निसा परवेज ने निश्चित रूप से स्त्री लेखन की जरूरत को स्पष्ट किया है कि नारी के मौन को शब्द नारी ही दे सकती है। उसके दुख को औरत ही समझ सकती है। वह ही पहचान सकती है औरत के शरीर पर अंकित घावों के निशानों को। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि स्त्री लेखन यदि स्त्री समाज को सही दिशा दे रहा है, उनकी चेतना के विकास में सहायक सिद्ध हो रहा है तथा उसमें स्त्रीत्व, स्वत्व के प्रति जागरूकता बढ़ रही है तो इसे शुभ लक्षण ही माना जाना चाहिए। आज तक पुरूष लेखन ने ऐसा कुछ भी नहीं किया हैं। पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित पाठिकाओं की प्रतिक्रियाएँ इसका साक्षात् प्रमाण हैं कि स्त्रियों की चेतना में बहुत तेजी से अपने अधिकारों, स्वत्व, अस्तित्व, अस्मिता के बारे में जागरूकता बढ़ी है। जैसे–जैसे स्त्री लेखन रचनात्मक स्तर पर और आलोचनात्मक स्पर पर स्त्रियों के लिए जबर्दस्त चेतना जगाने का काम करेगा उसी प्रकिया में स्त्री की दासता से मुक्ति होगी।

कृष्णा सोबती का लेखन हो अथवा महाश्वेता देवी का, मन्नू भण्डारी का लेखन हो या गगन गिल का, चित्रा मुद्गल अथवा मेहरून्निसा परवेज का, उसमें स्त्री मुक्ति के लिए जो चेतना आ रही है वही स्त्री समाज की चेतना का विकास कर सकेंगी। यही स्त्री लेखिकाओं की सबसे बड़ी भूमिका है कि वे तीसरी दुनिया की शोशित, पीड़ित, दलित स्त्रियों की मुक्ति के लिए लिखें, सोचें। तभी उनका लेखन पुरूष लेखन से दो कदम आगे का लेखन सिद्ध होगा। क्या कृष्णा सोबती का 'डार से बिछुड़ी', 'जिन्दगीनामा, 'मित्रों मरजानी, 'ऐ लड़की' या मन्नू भण्डारी का 'महाभोज', चित्रा मुद्गल महाश्वेता देवी, गगन गिल, का स्त्रीत्ववादी लेखन, रूची दुःख–दर्द, उसके अभिशाप और संताप, द्वन्द्वों और तनावों, उसकी गूंगी पीड़ा के मौन को वाणी नहीं दे सका। इन लेखिकाओं के लेखन के केन्द्र में स्त्री की भयावह समस्याएँ हैं, पितृसत्तात्मक मर्यादाओं की तीखी आलोचना है जिसने स्त्री समाज का खुला दमन किया है।

डा० नामवर का सिंह का मानना है कि : महिला–लेखन में सम्पूर्ण समाज की अभिव्यक्ति नहीं होती। दरअसल ऐसा लेखन छोटे समुदायो के हितो में रखकर किये जाते हैं। ऐसा साहित्य अर्थ–साहित्य को प्रतिनिधित्व करता है। यह लेखन तत्कालिक प्रतिक्रिया का परिणाम है, जबकि साहित्य मूल स्वरूप मानव–मुक्ति प्रदान करने वाला है। खण्ड–खण्ड में मुक्ति साहित्य का लक्ष्य नही है।''[२]

उपरोक्त प्रसिद्व आलोचकों की इस दृष्टि से यह आभास हो जाता है कि महिला–लेखन के खिलाफ शीत–युध्द्व का बिगुल बजा दिया गया है। बेशक खण्ड–खण्ड मे मुक्ति साहित्य का लक्ष्य नहीं क्योकि साहित्य का मूल स्वरूप मानव मुक्ति प्रदान करने वाला है, लेकिन ऐसी गर्वोक्ति के बाद क्या हम भी एसी रचना गिना सकते है, जहाँ परम्परागत सवर्ण व्यावस्था की रहनुमाई में एकलव्यों के अंगूठे न काटे गये हो, दोप्रदियो का चीर–हरण न हुआ हो, शूपर्णखाओं को महज़ विवाह प्रस्ताव रख देने के संगीन जुर्म में 'नाक' से हाथ न धोना पड़ा हो। अपने–अपने वर्गो का प्रतिनिधित्व करते हुये ये चारो नाम भी 'मानव' हैं

तो यकिनन आज 'खण्ड–खण्ड मे मुक्ति' ही साहित्य का लक्ष्य बन गया है, क्योंकि सवर्ण–मानव और अवर्ण मानव की 'मनुष्यता' में अभी गहरा अन्तर शेष है।

डा० निर्मला जैन और डा० निर्मल वर्मा के वक्तव्य अनकहे ही 'महिला–लेखन' के प्रति आलोचको के दुराग्राहो को चतुराईपूर्वक रेखांकित कर देते है और साथ ही महिला–लेखन को परिभषित करने की एक अदद कोशिश भी है। महिला–लेखन के मायने पुरुषो के व्यापकतर–वृहत्तर सरोकारों से दूर महिलाओ द्वारा किया 'स्त्रैण–लेखन' और सार्थक स्त्रीवादी लेखन।

सिद्वान्त के तौर पर महिला लेखन के स्वरूप और सरोकारो पर बात करना जितना आसान है, उतना ही कठिन है व्याहारिक दृष्टि से इसके अर्न्तगत समा सकने वाली स्तरीय रचनाओ की सूची बनाना और उन पर सार्थक बहस चलाना। बेशक महिला की जन्मगत–स्वभगत–समाज प्रदत्त 'दयनीय' दशा को लेकर पुरुष लेखको की लेखनी आज भी गीली हो जाया करती है –'अबला जीवन तेरी यही कहानी ' या 'योनी नही है रे नारी ' या 'मुक्त करो नारी को मानव, चिरबंदिनी नारी को।'

शरत और जैनेन्द्र के समय दोषी व्यावस्था पर अँगुली उठाना, लेखन का मुख्य उद्देश्य था लेकिन दोषी व्यावस्था पर अँगुली उठाना और दुख–दर्द की तमाम पोटलियो को धूप दिखाकर पुनः सलीके से सहेज लेना यह तो महिला–लेखन नहीं है। महिला–लेखन विषय वस्तु एवं जीवनी–शक्ति के लिए अपने समस्त आयामो और पड़ावो सहित किसी फ्रेमिनिज्म का मोहताज नही जो उसके भीतर की विकृतियो, विसंगतियो और अर्न्तविरोधों को आँख मूंदकर ग्रहण करता चले बल्कि उसके दायित्व दुहरे और तिहरे है।

'बग महिला' (राजेन्द्र घोष) की दुलाई वाली (सरस्वती 1907) से आधुनिक महिला कथा लेखन की जो परम्परागत प्रारंभ हुई वह निरंतर विकसित होते हुए गौरव षिखर पर पहुॅच रही है। इन यात्रा में न जाने कितने मोड़,पड़ाव, कष्ट, अवरोध उसके सम्मुख खड़े हुए, न जाने कितने नीर–क्षीर विवेकी समीक्षकों ने उसकी छोटी–बड़ी उपलब्धियों पर परिचर्चा की।

वास्तव में महिला कथा–लेखन मानवीय सुख–दुःख को महसूस करने की अपूर्व ग्राही षक्ति अपने अंदर समेटे हुए है। इसके पास मानव–हृदय की अथाह गहराइयों में प्रविष्ट होक नए अछूते और अलभ्य भावरत्नों को तलाषने की पैनी दृष्टि है। डॉ0 उषा यादव जी कहती है ''घर–परिवार के सारे दायित्वों को समेटते हुए और कभी–कभी तो घर–बाहरी के दोहरे उत्तरदायित्व को वहन करते हुए भी अपने भीतर घुमकड़ती 'चीख' को षब्दबद्ध करने की विवषता का नाम ही महिला लेखन है। समाज में चतुर्दिक व्याप्त विषमताएॅ और विसंगतियॉ। जब चाहे–अनचाहे किसी महिला के संवेदनषील कलाकार मन तक पहुॅचकर उसे आंदोलित करती है। तो वह उन्हें वाणी देने की बाध्य हो जाती है।'' अतः स्पष्ट है कि संवेदनषीलता ही सच्चे कलाकार की पहचान है।

यद्यपि बंग महिला ने उपन्यास न लिखकर केवल कहानियां लिखी परन्तु उपन्यास लेखन के लिए भाव–भूमि का निर्माण अवष्य कर दिया। डॉ0 उषा यादव कहती है कि ''उषा देवी मित्रा के उपन्यास लेखन के साथ हिंदी के महिला उपन्यास लेखन का द्वितीय अध्याय आरम्भ हुआ। स्वतंत्र्योत्तर काल की महिला उपन्यास लेखन की व्यापक प्रगति विकास के तीसरे अध्याय के नाम से जानी जाती सकती है। आधुनिक काल का सम–सामयिक महिला लेखन इस विकास–यात्रा का चौथा दौर है।''

समकालीन महिला लेखन में सामाजिक युग–बोध, भोगा हुआ यथार्थ,परिवर्तित नारी भावना, विषय वैविध्य, भावुकता एवं बुद्धिवाद के तत्व दिखलाई पड़ते है। यहॉ हम समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में चित्रित नारी का विष्लेषण स्त्री–विमर्ष के संदर्भ मे प्रस्तुत करेंगे।

महिला केन्द्रित हर रचना 'महिला–लेखन' हो ऐसा कतई जरुरी नहीं है। महिला–लेखन चूँकि एक नई नज़र से अपने आप को (स्त्री और पुरुष दोनों को) पहचानने की चेतना का नाम है। इसलिए यह किसी के पक्ष–विपक्ष में खड़े होकर बयान बाजी से कतराता है। बेशक, चेतना आक्रोश को जन्म देती है लेकिन हर आक्रोश चेतना का वाहक नही होता है। हुक्म रानो द्वारा घोषित और प्रमाणित अधूरेपन के खिलाफ सार्थक लड़ाई लड़ कर अपने को सम्मूर्णता में पाने का जज्बा सिर्फ महिला कथाकारो के पास ही है। सामाजिक सच्चाइयो और समाज शस्त्रीय आकड़ो को जब वे निर्विकार दृष्टि से देखती है तो रचना अपने आप ही सृजनात्मक ऊँचाइयाँ लेने लगती है।

सदियों से उत्पीड़ित अपराधी मानी जाने वाली जनजातियो के शोष्ण की अन्तहीन कथा और राजनीति में सक्रिय भागीदारी की स्वाभाविक महात्वाकाक्षां का माइक्रोस्कोपिक ब्योरा जानना हो तो मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' पढ़ना पड़ेगा और बाबरी मस्जिद विधंवस की प्रतिक्रिया स्वरूप इस्लामी देशों मे अल्पसंख्यक हिन्दुओ पर ढाये जाने वाले जुल्मो का पत्रकारिता शैली में अतिप्रमाणिक विवरण जानना चाहें तो तसलीमा नसरीन के 'लज्जा' से बेहतर विकल्प और कोई नही होगा।

महिला लेखन को घर और स्त्री पुरुष सम्बन्धो के दायरे मे बाँधना और उसे सीमित, आवृत्तिपरक, अनुपादक और दोयम दर्जे का समझना पितृसत्तात्मक व्यावस्था के उस स्वाभाविक अहंकार को रेखांकित करता है जो बावजूद इन तथ्यो के कि विश्व की कुल कार्य का ६० प्रतिशत अकेले सम्पन्न करने के बावजूद विश्व की कुल आय का ६० प्रतिशत ही भुगतान के रूप मे स्त्रियो को मिलता है और विश्व की कुल सम्पत्ती केवल ६ प्रतिशत हिस्से पर ही उनका निजी अधिकार –जनगणना के दौरान दिन–रात परिवारिक कार्यो और दायित्वों में व्यस्त महिला की गिनती बेरोज़गारों, आश्रितो और भिखारियों की श्रेणी में करता है। दुःख होता है कि जब हिन्दी आलोचना सार्थक, बहुआयामी, सामाजिक सरोकारों से पूर्ण और ज्वलंत प्रयत्नो से जुड़े 'महिला–लेखन' को मुख्य धारा से काटकर हाशिये पर डाल देती है। दुःख तब भी होता है जब टालस्टॉय, शरत् और जैनेद्र के बाद किसी पुरुष लेखक को महिला की मानवीय अस्मिता के

लिए संवेदित, उद्वेलित, आन्दोलित होते नहीं देखा जाता। फिर भी जिस दिन पूर्वाग्रहों एवं दुराग्रहों से मुक्त होकर महिला–लेखन स्वंय अपनी अस्मिता पर नाज करने लगेगा उस दिन आत्मगत आलोचना अपनी प्रायोजित सामूहिक बहिष्कार भी उसका बाल भी बांका न कर पायेगा।

ग्रन्थ–सूची

1. ''समय समय की शकुन्तला'' – रोमिला थापर
2. कोण्डेपुडी निर्मला, आपका जवाब क्या है ? पृ0 99
3. महादेवी वर्मा, श्रंखला की कड़ियॉ, अपनी बात, 'भूमिका' से
4. महादेवी वर्मा, श्रंखला की कड़ियॉ, अपनी बात, 'भूमिका' से पृ0 23
5. मेहरून्निसा परवेज, साहित्य वार्षिकी, वहीं, पृ027
6. हिन्दी कहानियों में षिल्प विधि का विकास, डा0 लक्ष्मी नारायण लाल पृ0 326
7. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरष मिश्र, पृ0 29
8. स्त्री परम्परा और आधुनिकता– राजकिषोर
9. समकालीन हिन्दी कथा लेखिकाएं– डॉ0 मधु गौतम
10. साहित्य, संस्कृति और रचना– डॉ0 सुरेन्द्र वर्मा
11. वर्तमान हिन्दी कथा लेखन और दाम्पात्य जीवन– साधना अग्रवाल
12. गगन गिल, इण्डिया टुडे, साहित्य वार्षिकी, 1996,पृ020
13. गगन गिल, इण्डिया टुडे, साहित्य वार्षिकी, 1996,पृ020